International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 14 Issue 5 || May 2025 || PP. 18-22

संत साहबराम राहड के साहित्य का सामाजिक युग बोध

डॉ० शर्मीला

सहायक प्रो.
हिंदी विभाग
गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, हिसार

सार :

संत साहबराम राहड़ का साहित्य अपने युग की चेतना को समाहित किए हुए है। ये अपने परिवेश के प्रति पूर्ण सजग रहे हैं चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो, धार्मिक–सांस्कृतिक हो या भाषायी परिवेश हो। भले ही इनका साहित्य संत–साहित्य की कोटि में आता है लेकिन इनका समसामयिक परिवेश उसमे पूर्णतः जीवित है। हरियाणा के हिसार, हाँसी, फतेहाबाद एवं सिरसा की क्षेत्रीयता का इन्होंने वर्णन किया है। इसके साथ ही इन्होंने आसपास के गाँवों की घटनाओं का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक घटनाओं में कल्पना का संयोजन करके इन्होंने कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं। इसके अतिरिक्त ये सन् 1857 की क्रांति के साक्षी रहे हैं। संत सहाबराम राहड ने सन् 1857 की क्रांति का वर्णन 'जम्भसार' में बड़े विस्तार से किया है। जम्भसार भाग–2 में 'संवत् उन्नीस सौ चवदह की गदर' शीर्षक से इस घटना का वर्णन किया है। हाँसी एवं हिसार में क्रांति के कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य भी मिलते हैं जिससे इनके साहित्य में वर्णित घटना की पुष्टि होती है। 'जम्भसार' जाम्भाणी साहित्य में एक नई कड़ी जोड़ता है जो भक्ति के साथ–साथ अपने समय के परिदृश्य को भी प्रस्तुत करता है।

keywords: संत, साहबराम, साहित्य, सामाजिक, युगबोध

Date of Submission: 25-04-2025 Date of acceptance: 04-05-2025

युगबोध दो शब्दों के सुमेल से बना है– युग और बोध। युग से तात्पर्य है– समय या काल तथा बोध से तात्पर्य है–ज्ञान। अतः युगबोध से अभिप्राय किसी काल विशेष की मान्यताओं, परिस्थितियों व संदर्भों के बोध से है। युगबोध का महत्व उसके विकसित एवं परिवर्तित होने से है। प्रत्येक युग की अपनी एक विशेष पहचान एवं महत्ता होती है। इसी कारण प्रत्येक युग अन्य युगों से भिन्न पहचान रखता है। इसके परिणामस्वरूप अतीत वर्तमान से भिन्नता रखता है। समय के साथ परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ व संदर्भ बदल जाते हैं। इसलिए प्रत्येक युग का बोध सर्वथा भिन्न है। प्रत्येक युग की अपनी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं। इन्हीं परिस्थितियों से किसी युग विशेष की पहचान बनती है। इसके साथ ही प्रत्येक देश व समाज का अपना एक बोध होता है और युग परिवर्तित होने के साथ उसका बोध भी बदल जाता है। बोध एक युग का दर्पण ही नहीं; बल्कि विद्रोह का स्वर भी है जो युग विशेष में रूढ़ियों और अमानवीय घटनाओं के लिए आवाज भी उठाता है।

युगबोध मानव मस्तिष्क की एक सहज प्रवृत्ति है। जब मनुष्य अपनी चिंतन शक्ति के माध्यम से अतीत को वर्तमान के संदर्भ में देखता है तो बहुत कुछ परिवर्तित महसूस करता है। "समाज, संस्कृति, धर्म, आध्यात्म, नैतिकता आदि का स्वरूप जिस युग में जैसा रहता है उसे ठीक उसी रूप में ग्रहण कर अभिव्यक्त करना कवि, कथाकार व नाटककार के साहित्य का युगबोध कहा जाता है।"

लेखक समकालीन जीवन के जिन अनुभवों के आधार पर चेतना के स्तर पर जिस जागरूक चिंतन को जन्म देता है वह 'बोध' होता है। यही बोध युगजीवन की सम्प्रक्ति के कारण युगबोध का अभिधान पाता है। युगबोध आधुनिकता से जुड़ा हुआ है। वास्तव में प्रत्येक युगकाल की दृष्टि से अपने वर्तमान रूप में आधुनिक ही रहता है। आधुनिकता, युगबोध और युगीन चेतना समानार्थी कहे जा सकते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि युगबोध का कोई निश्चित मापदंड नहीं है जिसके आधार पर इसे परिभाषित किया जा सके। विभिन्न विद्वानों ने इसे अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है। युगबोध एक धारा है जो काल सापेक्ष है, जिसकी भावचेतना मनुष्य, समाज और उसके परिवेश से बंधी हुई है। युगबोध व्यक्ति में सहज उभरकर नहीं आता, अपितु संवेदनशील कथाकार जो समाज की गतिविधियों से परिचित है, अपनी अनुभूतियों व युगीन यथार्थ चेतना के माध्यम से अपनी रचनाओं में रूपायित करता है।

साहित्य का अपने समय के परिवेश और युगबोध से गहरा संबंध है। साहित्य में युगविशेष की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का संयोजन रहता है। रचनाकार अपने परिवेश से प्रभावित होकर विभिन्न घटनाओं का विवेचन–विश्लेषण करता है और उसे

कल्पना एवं भाषा के जरिए रचना का आकार देता है। रचनाकार की अपने युग के प्रति चेतना उसकी रचना को जीवंत एवं कालजयी बनाती है। वह अपनी सामयिक समस्याओं को सामने लाता है और उन पर प्रश्न उठाता है। उसकी अपने परिवेश के प्रति यही चेतना युगबोध कहलाती है।

भक्ति आंदोलन अपने पूरे कालखंड में सामयिकता और युगबोध को समेटे हुए है। इस समृद्ध भक्ति–साहित्य में संतों का विशेष योगदान रहा है। संत शब्द स्वयं में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। संत सदैव लोक कल्याण के लिए जीते हैं, समाज में घटित होने वाली बड़ी–से–बड़ी और छोटी–से–छोटी घटना की ओर उनकी दृष्टि रहती है। समाज से कटकर संत साहित्य का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। संत–साहित्य चेतना का पुंज रहा है जिसमें हम कबीर, नानक, गुरु जम्भेश्वर, दादूदयाल, धन्ना, पीपा, रज्जब आदि संतों की वाणी का प्रमुखता से वर्णन कर सकते हैं। संतों ने समाज एवं साहित्य को अपनी वाणी के माध्यम से पोषित और फलीभूत किया। इस क्रम में हरियाणा के नांधडी गाँव के बिश्नोई संत साहबराम राहड का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इनका जन्म सन् 1814 में राजस्थान में हुंडिया के कुचामन पट्टे में हुआ था। ये विष्णोई भक्त रतनोजी राहड़ के वंशज तारोजी के पांच पुत्रों में से एक थे–

मेह्दो ठुकरो रतनो ंराडा। दीन्हौ जम्भ बिवाणों चाडा।
थिरो हंसो खैरो जम्भो मियौ। टीलौज आसो दांमो रोमियौ।
रोमियो किन रोमावली पांचा। लिया नाम नहिं लागी आंचा।
रायमल रूपो जियौ जांणौ। तारो संत गुरु जीव पिछाणौ।
तौर भक्त कै पुत्र पाचां। होम करै नित शब्द ही वांचा।
तुलछो चेनों जसराम अनंदा। साहिबराम जम्भकर बंदा।
जेहि साहिब जम्भसार बनायो। जंभगुरु को दर्शन पायो।
कृपा कर ह्रदै में रहेऊ। ताते जंभसार कहि दऐऊ। (जम्भसार भाग–1)

सन् 1855 में इन्होंने रामडावास में विल्होजी के मन्दिर के निर्माण कार्य को पूर्ण करवाया था। इसके निर्माण का कार्य संत गुलाबदास जी ने आरम्भ किया था, उनके पश्चात इस अपूर्ण कार्य को संत साहबराम राहड़ ने फलीभूत किया। ये कई वर्ष तक नांधडी गाँव में रहे जो हिसार जिले में स्थित है। फिर ये दुतारंवाली में जाकर बस गए जो वर्तमान में पंजाब के फाजिल्का जिले में है। इन्होंने 'जम्भसार' शीर्षक से रचना की जो दो भागों में उपलब्ध है। उसमें चौबीस प्रकरण है जो विभिन्न विषयों से संबंधित हैं। इनके पूर्वज रतनोजी एक सच्चे भक्त थे जिसका वर्णन इन्होने 18वें प्रकरण में किया है कि किस प्रकार से ये अपने ससुराल वालों द्वारा साधु की सेवा न करने से रूष्ट हो गए और बिना कुछ दान–दहेज लिए ही अपनी पत्नी को साथ लेकर आ गये थे। इस कारण इनके माता–पिता भी क्रुद्ध हो गए और इन्होंने घरबार छोड़ दिया; आगे की घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन 18वें प्रकरण में मिलता है। इसी वंश में ताराजी हुए जो सच्चे भक्त थे और इन्हीं के पुत्र संत साहबराम राहड हुए जिन्होंने साधु जीवन से गृहस्थाश्रम में परिवेश किया।

समाजिक युगबोध को समझने के लिए पहले समाज और युगबोध के विषय में जानना आवश्यक है। समाज शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग में अज् धातु और घञ् प्रत्यय लगने से हुई है। सम् का अर्थ है सम्यक् रूप से तथा अज् का अर्थ है जाना। डॉ० सीताराम झा 'श्याम' ने समाज को व्याख्यायित करते हुए कहा है– "सम्यक् अजन्ति–गच्छन्ति जनाः अस्मिन् इति समाजः "अर्थात् जिसमें सभी लोग अच्छी तरह रहें, वह समाज है।'

म्हादेवी वर्मा के अनुसार, "जब एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए आचरण करता है, तो समाज का आविर्भाव होता है। ऐसे ही संबंधों को हम सामाजिक कह सकते हैं।"

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार, "...समाज व्यक्तियों के समूह से बढ़ कर है और उसी तरह जैसे पुर्जों के ढेर से घड़ी बढ़ कर है– इस तरह समाज मनुष्य़ मनुष्य नहीं है ,बल्कि समाज मनुष्य ग मनुष्य है।"

आगे अज्ञेय समाज की चरमावस्था मनुष्येतर बताते हुए लिखते हैं, "समाज से अभिप्राय वह परिवृति जिसके साथ व्यक्ति किसी प्रकार अपनापन महसूस करे। वह मानव–समाज का एक अंश भी हो सकता है, और मानव–समाज की परिधि से बाहर बढ़ कर पशु–पक्षियों (जीव–मात्र) को भी घेर सकती है; बल्कि (चरमावस्था में) मानव–समाज को छोड़कर पशु–पक्षियों और पेड़–पत्तों तक ही रह जा सकती है। समाज की इयत्ता अन्ततोगत्वा समाजत्व की भावना पर ही आश्रित है।"

'समाज व्यक्ति को वह अवसर व पर्यावरण प्रदान करता है जिसमें मानव–स्वभाव व्यक्तित्व का निर्माण व विकास सम्भव हो। इतना ही नहीं, समाज ही व्यक्ति के व्यवहार, विश्वास तथा आचार को प्रभावित, नियमित और नियंत्रित करता है।'

समाजशास्त्रियों ने समाज को तीन भागों में विभाजित किया है जो आगे जा कर कई उपवर्गों में विभाजित हो जाते हैं–

1) उच्चवर्ग

इसमें शासक, जमींदार और पूँजीपति वर्ग आते हैं।

2) मध्य वर्ग

इसमें प्रशासन के कार्यों में सहभागिता निभाने वाले कर्मचारी, महाजन एवं छोटा–मोटा व्यापार करने वाले व्यापारी सम्मिलित हैं।

3) निम्नवर्ग

इसमें छोटी काश्त के किसान, मजदूर, कारीगर एवं श्रमिक वर्ग आते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि वर्ग मनुष्यों का एक ऐसा समूह होता है जो सामाजिक स्थिति के आधार पर निश्चित होता है। अपने समय के प्रति संवेदनशील और जागरूक होकर उसका वर्णन करना युगबोध है। समाज की व्यवस्था और स्थितियों का अपनी चेतना के स्तर पर विवेचन–विश्लेषण करना सामाजिक युगबोध कहलाता है। संत साहबराम राहड अपने तत्कालीन सामाजिक परिवेश के प्रति सजग थे। उन्होंने समाज में व्याप्त जाति–व्यवस्था, नशे की समस्या, जीव–हत्या का विरोध, कुरीतियों एवं बाह्याडंबरों आदि का वर्णन किया है। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजा राममोहन राय ने 20 अगस्त, 1828 ई० को 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की। इसके अतिरिक्त सन् 1875 ई० को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्यसमाज' की, स्वामी विवेकानंद ने रामकिशन मिशन और आयरिश महिला 'एनी बेसेण्ट ने 'थियोसोफिकल सोसायटी' की स्थापना की। इन संस्थाओं की स्थापना के कारण समाज के नवीन चेतना उत्पन्न हुई। बाल विवाह, जातिवाद और कन्या–मोल जैसी कुरीतिओं का विरोध शुरू हुआ और स्त्री–शिक्षा पर बल दिया जाने लगा। इसका प्रभाव कवि की लेखनी में भी दिखाई देता है। इन्होंने शिक्षा के बिना स्त्री को पशु के समान कहा है–

औरत कूं ऐलम सिखलावौ। सीखे बहुत फायदा पावौ।
नहिं सिखलावै बहू नुखसाना। त्रिया रहती पशु समाना ।

यह इनके साहित्य की प्रगतिशील चेतना है जो स्त्री–शिक्षा पर बात करती है। तत्कालीन समाज में कन्या–मोल की प्रथा प्रचलन में थी जिसका कवि ने विरोध किया। इन्होंने कहा–

जिग मैं कन्या पुन्य परणावै। जो सतगुरु के बाल कहावै।
कन्या द्रब कदे नहिं लीजै। आमख तुल्य सो द्रब कहीजै।

बिश्नोई समाज अपने पथ से च्युत न हो, इसलिए संत साहबराम राहड़ ने अपनी वाणी से समाज को जागरूक करने का कार्य किया। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्याडंबरों एवं पाखंडों पर प्रहार करते हुए आंतरिक शुद्धि और सद्कार्यों पर बल दिया–

मूंडे केस भेड दोय वारा। सबसे नीचा याहि जमारा।
राख लगायां जो गति होवै। निसदिन गधा राख महि सोवै।
धूवां तापे गति नां भाई। लोहार तपै निस दिवस सदाई।
जंगल वसे मुक्ति कर मांनो। रीछ रहत नित वन में जानों।

संत साहबराम ने इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में व्याप्त नशे की बुराई से सावधान किया है। 19 वीं शताब्दी में जब नशे के व्यापार और प्रभाव में बढ़ोतरी हो रही थी तथा एक समय के पश्चात इन्हीं के कारण अफीम युद्ध भी हुए। कवि ने इस तरह के नशों के प्रति लोगों को चेताया–

अब एक पाप कहूं समझाई। सो करही जो नरक में जाई।
भांग तमाखू पोसत पीवही। खाय अफीम अंचू क्यों जीवही।
मदरा मांस तास कुल खावही। अवस अगति जाय नरक परावही।

इस प्रकार संत साहबराम राहड ने समाज के दुर्बलपक्ष का वर्णन किया तो वहीं बिश्नोई पंथ के समाज में योगदान का वर्णन ओजस्वी वाणी में किया। संवन्त् 1661 में करमां एवं गौरां ने रामासड़ी में, श्रीमती खींवणीं खोखर, मोटाजी खोखर एवं नैतू नैण ने तिलासणी में तथा संवन्त् 1700 में पोलावास के बूचोजी ऐचरा ने वृक्षों की रक्षा के लिए अपने प्राण त्याग दिए थे।

इन सभी घटनाओं का संत साहबराम राहड से पूर्व के कवियों ने वर्णन किया है लेकिन साहबराम की अभिव्यंजना की अपनी विशेषता है। इनकी वाणी में एक ओज विद्यमान है जो शासन के विरुद्ध लड़ने के रूप में सामने आता है। सत्ता प्राकृतिक संसाधनों को अपनी धरोहर समझती थी और इसी अहं के कारण राजा–महाराजा, ठाकुर और जागीरदार आदि हर समय किसी भी स्थान पर वृक्ष काटने को तैयार रहते थे–

गांव हमारो रूंख हमारा। तामै काहां है जोर तुम्हारा।[1]

इसके विपरीत बिश्नोई वृक्षों व वन्य प्राणियों की रक्षा करना अपना धर्म मानते थे और किसी भी परिस्थिति में अपने धर्म से च्युत होने को तैयार नहीं थे।

जीव जंत हम मारा नाहीं। रूंख राय म्हे काटा कांही।
कोउ मारै तो मारन न देवां। जंभगुरु कहि दई सो सेवा।

यदि कोई अहं वश वृक्षों को काटने की कोशिश करता था तो बिश्नोई अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते थे। इसी कारण इस पंथ को तलवार की धार के समान माना गया है।

यह तो पंथ खड़ग की धारा। जो न डिगै सो उतरै पारा।

[1]जम्भसार भाग–2, पृ0 317

पार गयो फिर बहुर न आवै। जाय जोत कै माहि समावै।

इन नियमों पर दृढ़ रहने के कारण ही बिश्नोई वृक्षों की रक्षा में सफल रहे हैं और राजा–महाराजाओं को वृक्ष न काटने के परवाने जारी करने पड़े हैं। तिलासणी की घटना में गोपालदास इसी तरह की प्रतिज्ञा करता है और क्षमा मांगता है–

जीव जंत पुन भले न मारां। रूंख राय कोउ नाहिं संघारा।
अस परवानों लिख कर दयऊ। हाथ जोड़ कै ठाढे भयउ।[2]

इसके पश्चात संवत् 1700 में चौत वदि तीज, मंगलवार को बूचोजी ऐचरा ने वृक्षों के संरक्षण के लिए अपने प्राण न्यौछावर किए। संत साहबराम ने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा है कि अपनी गलती का अहसास होने पर नरसिंघदास ने बिश्नोई समाज के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि वह कभी भी हरे वृक्ष नहीं काटेगा और न दूसरों को काटने देगा।

यही स्थिति खेजड़ली बलिदान में भी उत्पन्न होती है। राजा अभय सिंह को भी क्षमा प्रार्थी होना पड़ा और साथ ही परवाना लिख कर देना पड़ा कि भविष्य में बिश्नोईयों के गाँवों में वृक्ष नहीं काटे जाएंगे और न वन्य प्राणियों का शिकार किया जाएगा।

संत साहबराम ने भूतपूर्व में घटित हुई इन घटनाओं का वर्णन समाज में चेतना भरने के लिए किया। कवि के समय में भी वृक्षों का कटाव और वन्य जीवों का शिकार किया जा रहा था। बिश्नोई समाज की प्रकृति के प्रति समर्पण कम न हो इसलिए उन्होंने इन घटनाओं की अभिव्यक्ति अपनी संवेदना के धरातल पर की। इन घटनाओं में बिश्नोई समाज की उग्रता उनके समय की देन है। इस समय तक समाज में काफी बदलाव आ चुके थे। ये तो इसने पूर्व की घटनाएँ थीं। इनके समय में भी जीव–हत्या की घटनाएँ घटी थीं जिनका इन्होंने विस्तार से वर्णन किया है। संवत् 1900 के आसपास जोधपुर के राजा तख्तसिंह अपने सेवक के साथ विश्नाईयों के गांव हिंगोली गया जहां राजा हिरण का शिकार करने में सफल नहीं हुआ। किंतु इस दौरान घोड़े से गिरने के कारण उसका एक हाथ टूट गया। इसके बाद राजा ने बिश्नोईयों के गाँवों में खेजड़ी न काटने एवं शिकार न करने का परवाना दिया।

तख्तसिंघ महाराज जो, ऐसे भए दयाल।
जांभैजी के धरम की, सदा करी प्रतिपाल।[3]

19 वीं शताब्दी के पूर्व ही कुछ बिश्नोई मरुप्रदेश को छोड़कर पंजाब की ओर आ गए थे।"The Bishnois are found also in some numbers in the Sirsa district. Here,in Hisar,they hold 10 villages as proprietors."[4]

सन् 1857 के गदर के समय पंजाब के हिसार के चिंदड़ के तालाब की घटना का वर्णन किया है जिसमें सीसवाल, सदलपुर और आदमपुर आदि गांवों के बिश्नोई जीवों के संरक्षण के लिए मुसलमानों से सांडों और गौओं को छुड़वाने में सफल होते हैं। गामणा काजल ने उस समय चिंदड़ के जोहड़ पर सांड को मारते हुए मुसलमानों को देखा।

मैं चिंदड़ कै जोडे गयो। गरीब सांड कूं मारत भऐ।[5]

इस घटना के समय साहबराम गंगाराम ढाकै के गीतासार पर मंथन कर रहे थे।[6] बिश्नोईयों की जीव–रक्षार्थ भावना को देखते हुए अंग्रेजों ने बिश्नोईयों के गाँवों की सीमा में हरे वृक्ष न काटने तथा शिकार न करने के आदेश दिए थे।[7]

इस प्रकार संत साहबराम राहड ने भूतपूर्व में घटित घटनाओं के अतिरिक्त तत्कालीन समाज में आँखों देखी घटनाओं का जीवंत वर्णन किया। यह उनके प्रखर सामाजिक युगबोध का प्रमाण है। इन घटनाओं के अतिरिक्त कवि ने सन् 1857 की क्रांति का वर्णन 'जम्भसार' में 'संवत उन्नीस सौ चवदह की गदर' के नाम से किया है। हरियाणा के परिदृश्य में सन् 1857 की घटना का वर्णन करने वाला यह अनूठा ग्रंथ है। कवि ने सन् 1857 की घटना के विषय में लिखा है–

कारतूस कै चरबी पासा। खांड घृत मैं चरबी भाशा।
पूरबिया कूँ द्रस्यौ पापा। फिरय फोज सब आपहि आपा।
डाक बंध कर दीनी जबही । तूटी नाड़ जीवन की कब ही।

[2]जम्भसार भाग–2, पृ0 321

[3]जम्भसार भाग–2, पृ0 357

[4] Gazetteer of the Hissar District : comp. and Pub. Under the Authority of the Punjab Govt.1883-84, Page no. 38

[5]जम्भसार भाग–2, पृ0 360

[6]जम्भसार भाग–2, पृ० 361

[7]जाम्भोजी, बिश्नोईसम्प्रदाय औरसाहित्य, दूसराभाग, पृ0 1002 (परिशिष्ट)

नाड़ समान डाक ईह जांणौ। देह समान राज इह डांणौ।[8]

इन्होंने मुख्य रूप से सदलपुर, आदमपुर और चिंदड़ का वर्णन किया है। इसके अलावा आसपास के गाँवों जिनमें रावत खेड़ा, बनावली, कालवास, चौद्रिवास, टोंकस, गंगवा, अकूरडी, नांदड़ी, चिकणाास, काजला, कालीरामण, भोड़िया, खारा खेड़ी, बड़ोपल, धांगड, महम्मदपुर गोरखपुर आदि प्रमुख हैं। इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है–

गोली अरू बारूद मंगायौ। धूड़ कोट सझ किलो बनायौ।
बंदूका ब्रछी अरू कटारी । तोड़ कड़ाव घड़ाऐ सारी ।
बहु धंमसांण जुड़ी सब न्याता । तीस गांव जुड़ी रही जमाता।[9]

हाँसी और हिसार में भी क्रांति के घटित होने के प्रमाण मिलते हैं–

मिरट मार हांसी आय भारी। हंसार गदर मच्यौ बहु भारी।
राजा मरे लोक विचलाऐ। आपस में सब लूट मचाऐ।[10]

डॉ.महेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक हिसार–ए–फिरोजा (इतिहास के झरोखे में) में सन् 1857 की क्रांति के संबंध में लिखा है,'' भट्टू, खारा बरवाला, अग्रोहा, गोरखपुर, बीघड़, माजरा व हाँसी क्षेत्र के गाँवों के विरुद्ध भी जनरल वार्न कोर्टलैंड की कार्यवाही चली। उसने इन गाँवों में भट्टियों को विशेष रूप से निशाना बनाया, पटियाला व जीन्द के शासकों ने भी कोर्टलैंड की इस कार्यवाही में मदद की।

यह संदर्भ संत साहबराम राहड द्वारा वर्णित विद्रोह की ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा पुष्टि होती है। इस प्रकार कवि ने समाज के विभिन्न पक्षों को समक्ष रखा है जिसमें नकारात्मक और सकारात्मक, दोनों ही पक्ष मौजूद हैं। कवि ने समाज के बिगड़ते–बनते पहलू के साथ ग्रामीण अंचल में देशप्रेम की भावना का भी भली–भाँति चित्रण किया है। यह इनके साहित्य की एक विशेष उपलब्धि है।

उपसंहार :

अतः संत साहबराम का साहित्य अपने आसपास की गतिविधियों से जीवंत है। लोक–जीवन की घटनाएं और उसकी दिनचर्या उनके साहित्य को परिचालित करती हैं। समाज में मौजूद मजहब, जाति–भेद, भाईचारा, वेशभूषा, त्योहार आदि का वर्णन कवि ने बहुत अच्छे ढंग से किया है। इसके अतिरिक्त सन् 1857 की क्रांति, बिश्नोईयों और मुसलमानों के बीच टकराव, बाद में उनका बीघड़ से पंजाब की तरफ पलायन आदि का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। बिश्नोईयों की पर्यावरण संरक्षण के लिए निष्ठा जम्भसार में अच्छे से देखने को मिलती है जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश राज में अंग्रेजों को परवाना लिख कर देना पड़ा था। क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक उठा–पटक का सूक्ष्म चित्रण जम्भसार में दिखने को मिलता है जो एक धरोहर के रूप में मौजूद है। ऐसा कोई अन्य ग्रंथ अभी तक अस्तित्व में आया ही नहीं। इस प्रकार संत साहबराम का साहित्य युगबोध की दृष्टि से समृद्ध एवं सम्पन्न है।

सहायक ग्रंथः

1. सं0 कृष्णानंद शास्त्री :जम्भसार भाग–1 और 2, प्रथम सं0 1982
2. Gazetteer of the Hissar District : comp. and Pub. Under the Authority of the Punjab Govt.1883-84
3. डॉ0 हीरालाल माहेश्वरी : जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, कलकत्ता, बी० आर० पब्लिकेशन्स, 1969)
4. डॉ० रामविलास शर्मा : भाषा और समाज, पिपल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
5. पं0 विश्वेश्वरनाथ रेउ : मारवाड़ का इतिहास, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाशन, जोधपुर, राजस्थानी ग्रंथागार, 1940

[8]जम्भसार भाग–2, पृ0 357
[9]जम्भसारभाग–2, पृ0 359
[10]जम्भसार भाग–2, पृ0 358